Environment Conservation Journal, 20 (SE):135-142, 2019
ISSN 0972-3099 (Print) 2278-5124 (Online)
DOI: https://doi.org/10.36953/ECJ.2019.SE02026
https://www.environcj.in/

यौगिक ग्रन्थों में प्राणतत्वः एक विवेचन

Vikas and Suman ✉

Received: 09.09.2019 **Revised: 24.10.2019** **Accepted: 29.11.2019**

Abstract

प्रस्तुत शोध अध्ययन का उद्देश्य यौगिक ग्रन्थों में वर्णित प्राणतत्व, प्राण का स्वरूप, प्राण के भेद, प्राण के कर्म का वर्णन करना है। प्राण सभी जीवित प्राणियों के जीवन का आधार है। प्राण के अभाव में जीवन के अस्तित्व की कल्पना नामुमकिन है। प्राण को हम ऊर्जा, तेज अथवा शक्ति भी कह सकते है। प्राण प्रत्येक उस वस्तु में प्रवाहित होता है जिसका अस्तित्व होता है। प्राण भौतिक संसार, चेतना और मन सभी शारीरिक कार्यो को विनियमित करता है। उदाहरणार्थ श्वास, आक्सीजन की आपूर्ति, पाचन, निष्कासन-अपसर्जन आदि। मानव शरीर का कार्य एक ट्रांसफार्मर की भांति है जो विश्व भर में प्रवाहित प्राण से ऊर्जा प्राप्त करता है। और ऊर्जा का आंवटन करता है व फिर इसे समाप्त कर देता है। यदि प्राण को ब्रहमांड से वापस ले लिया जाए तो पूर्ण विघटन हो जायेगा। सजीव हो या निर्जिव, सभी प्राणी प्राण के कारण ही जीवित है सृष्टि की हर एक अभिव्यक्ति ऊर्जा कणो के अनन्त जालक का ही अंग है, जिसमें ऊर्जा-कण भिन्न-भिन्न घनत्व, सयोंजन और प्रकारन्तर के साथ व्यवस्थित के साथ व्यवस्थित है। प्राण का सार्वभौम सिद्धांत स्थैतिक या गत्यात्मक किसी भी अवस्था के लिए हो सकता है, लेकिन यह उच्चतम से लेकर निम्नतम जीवों के अस्तित्व के हर स्तर का आधार होता है। प्राण सबसे सरल होते हुए भी द्रष्टाओं द्वारा प्रस्तुत की गयी सबसे गूढ़ अवधारणा है। सृष्टि की प्रत्येक वस्तु प्राण के विशाल, सर्वव्यापी सागर में तैर रही है और उसी में से अपने लिए आवश्यक तत्वों को प्राप्त कर लेती है। हर व्यक्ति में प्राण की मात्रा उसके व्यक्तित्व की शक्ति से निदर्शित होती है, जो प्राण को नियंत्रित करने की उसकी स्वाभाविक क्षमता को प्रतिबिंबित करती है। कुछ लोग अपने प्राण स्तर के कारण दूसरो की अपेक्षा अधिक सफल, प्रभावशाली और मोहक होते है। प्रत्येक योग विज्ञान-मंत्र, यज्ञ, तप, एकाग्रता एंव ध्यान के विभिन्न अभ्यासों का उद्देश्य होता है-प्रत्येक व्यक्ति या व्यापक ब्रहाण्ड में स्थित प्राणशक्ति को जागृत करना और उसका विस्तार करना।

Key Words: प्राणतत्व, यौगिक ग्रन्थों, विज्ञान-मंत्र, यज्ञ

Introduction

हजारों वर्ष पूर्व हिमालय की कंदराओं में रहने वाले योगियों ने सृष्टि की अंतर्भूत विशेषता, गति का समझा और उसे प्राण का नाम दिया। प्राण शब्द में 'जीवन्तता' के लक्षण अन्तर्निहित है। योग के दृष्टिकोण से सारा ब्रहमाण्ड जीवित है और प्राण से स्ंपदित है।

1. शब्दकोश में प्राण का अर्थ श्वास जीवन शक्ति, जीवन, जीवनदायी वायु, जीवन का मूल तत्व, जीवन के पांचों प्राणों में से पहला वायु अन्दर खीचा हुआ श्वास, ऊर्जा, साम्थर्य शक्ति, जीव या आत्मा परमात्मा, ज्ञानेन्द्रिया, प्राणों के समान आवश्यक या प्रिय व्यक्ति या पदार्थ कविता का सत्, काव्यमयी प्रतिभा, स्फूर्ति, महत्वकांक्षा, पाचन।

2. प्रकृष्ट रूप से हो रही क्रिया 'प्राण' है प्राण शब्द की व्युत्पति 'प्र' उपसर्ग लगाकर 'अन्' धातु है अन् धातु जीवन शक्ति, जीवन-क्रिया, चेतन-वाचक है। अर्थात प्राण का अर्थ हुआ प्रकृष्ट रूप से हो रही जीवन क्रिया। इसलिए प्राण शब्द का अर्थ चेतन-शक्ति के लिए किया जाता है।

3. विश्व की समस्त शक्तियों का उद्गम प्राण है- पंचभुतों में प्रथम तत्व 'आकाश' को जगत के रूप में पराणित करने वाली शक्ति प्राण है। भौतिक पदार्थ की समस्त बाह्य या अभ्यांतर शक्तियों का कारण प्राण है।

Author's Address
चौ) रणबीर सिंह विश्वविद्यालय, जीन्द (हरियाणा)
E-mail.: *vikasgill28895@gmail.com*

© ASEA
This work is licensed under Attribution-Non Commercial 4.0 International (CC BY-NC 4.0)

बाह्य एंव अन्तजगत की समस्त शक्तियां जब अपनी मूल अवस्था में पंहुचती है। तब उसी को प्राण कहते है।

4. शरीर में प्राण दो शक्तियां है - शारीरिक व मानसिक प्राण की शारीरिक शक्ति उसका तेज है प्राण के तेज से ही तो शरीर क्रिया करता है। प्राण की मानसिक शक्ति उसका चित है इस चित के द्वारा ही संकल्प-विकल्प होता है।

5. श्वास-प्रश्वास प्राण नहीं है - आजकल बहुत से लोग नाक द्वारा लिया जाने वाला श्वास-प्रश्वास को प्राण समझ लेती है किन्तु यह अवधारणा ठीक नहीं है। वास्तव में श्वास-प्रश्वास की क्रिया के साथ प्राण का बहुत गहरा सम्बंध है। मनुष्य देह में प्राण की सबसे स्पष्ट अभिव्यक्ति है - फेफडे की गति और इस गति के कारण श्वास-प्रश्वास है।

प्राण के पर्यायवाची शब्द हैः-

1) **अंगीरस-** प्राण को अंगीरस कहा जाता है क्योंकि शरीर के अंगो का यह रस है।

2) **बृहस्पति -** प्राण को बृहस्पति माना गया है क्योकिं वाजी (वाक्) ''बृहती'' (महान) है और प्राण उसका पति है।

3) **अन -** प्राण को 'अन्' कहते है अन् का अर्थ होता है 'प्राणशक्ति' जो प्राण देता है प्राण इस अन्न का भोक्ता है।

प्राण की महिमा-

सृष्टि से लेकर प्रलय तक तथा जन्म से लेकर मृत्यु तक प्राण तत्व ही प्रधान रूप से विद्यमान होकर कार्य कर रहा है स्वंय अपरा-प्रकृति आकाश तत्व में अधिष्ठित होकर प्राण तत्व से अपनी रचना करती है। इसी रचना के अनुसार अन्दर-बाहर सामान रूप से विद्यमान होकर प्राणतत्व जीवनदायिनि शक्ति के रूप में जीवन प्रदान कर रहा है। जीवन के अस्तित्व के लिए प्राण एंव चेतना, दोनों का होना आवश्यक है। चेतन अनुभुति ही चित्त है जो चेतन अनुभूति के निकट ले जाता है वह प्राण है और जो प्राण को प्रेरित करती है वह वासना है। इसलिए प्राण और वासना चित्त के दो आधार है सजीवन को प्राणी कहा जाता है अर्थात् वह जिसमें प्राण और चेतना हो ऐसा नहीं की चेतना अस्तित्व का कारण हो और प्राण उसका परिणाम न ही प्राण कारण या चेतना परिणाम है। शिव स्वरोदय में आदिनाथ शिव देवी को मनुष्य के सबसे बड़े मित्र के बारे में बताते हुए प्राण को परम मित्र, परम सखा, सबसे घनिष्ठ मित्र कहते है।

सम्पूर्ण जगत् में जो कुछ भी है, वह प्राण से उत्पन्न होकर स्ंपदित होता है। मनुष्य शरीर में संचारित प्राण शक्ति तब तक शुद्ध रहती है तब तक संपूर्ण शरीर के अंग पुष्ट होकर भली-भांति क्रिया करते रहते है और व्यक्ति निरोगी प्रखर बुद्धि से युक्त होकर साधारण मनुष्य श्रेष्ठ जीवन व्यतीत करता है। लेकिन प्राण शक्ति में मलीनता आ जाए तो व्यक्ति का शरीर विभिन्न प्रकार की व्याधियों से युक्त हो जाता है। प्राणों की शुद्धता बुद्धि का विकास और मन को स्थिरता प्रदान करती है जिसने प्राण तत्व के महत्व को न समझकर संयम करने का प्रयास नहीं किया वह इसी भ्रम से युक्त संसार में अज्ञानता के कारण तृष्णा से युक्त, जन्म-मृत्यु को प्राप्त होता हुआ, कष्टों को भोगता रहता है। वर्तमान समय में ज्यादातर अभ्यासियों की असफलता का कारण प्राण तत्व की शुद्धता को महत्व न देना ही है इस शुद्धता का महत्व सिर्फ आध्यात्मिक पथ पर चलने वालों के लिए ही नहीं अपितु सामान्यजन के लिए भी है।

प्राण एंवम इनके कार्यः-

प्राण हमारे भौतिक शरीर में शारीरिक क्रियाओं के रूप में अभिव्यक्ति होते है यदपि प्राण एक है परन्तु मनुष्य शरीर में स्थान और क्रिया भेद के आधार पर विभाजित किया गया है- प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान।

1) **प्राणः-**

प्राण का निवास हृदयस्थान में रहता है यदि उसका स्पंदन रूक जाता है तो सभी कुछ रूक जाता है यह वायुओं में सर्वप्रमुख है जैसे गंगाजी एक रहती है पर घाट-

घाटों के नाम अनेक प्रकार से रखे जाते है उसी प्रकार प्रत्येक स्थान पर प्राणवायु ही है पर इसके कार्य के अनुसार प्रत्येक स्थान पर अगल-अलग नाम पडे है। शरीर के चैरासी स्थानों पर चैरासी वायु रहते है।

प्राण नामक वायु शिरः प्रदेश में गतिशील रहता है कण्ठ तथा उरः प्रदेश में विचरण करता हुआ बुद्धि, ह्रदय सभी इन्द्रियों एंव मन को धारण करता है। यह ष्ठीवन, छींक, उदगार, निःश्वास तथा अन्न प्रवेश की और ढकेलना कर्मो को करता है। जो वायु वक्त्र में संचरण करता है उसका नाम प्राण है। यह प्राण शरीर को धारण करता है। भोजन को शरीर के अन्दर प्रविष्ट करता है। प्राणो का (अग्नि सोमाय) अधिष्टान (आधार भूत आश्रय स्थान) है। दूषित होकर यह प्राण हिक्का-श्वास-प्रतिश्याय आदि रोगों को उत्पन्न करता है।

शिरः प्रदेश, छाती, कण्ड (पाठभेद के अनुसार-कान) जीभ, मुख, नासिका ये स्थान प्रमुख रूप से प्राणवायु के है। छीवन, छीकना, डकारो का आना, श्वास तथा उच्छवास, आहार आदि (शब्द से पीने ग्रहण कर लेना चाहिए) ये प्राणवायु के प्रमुख कर्म है।

2) अपानः-

अपान गुदा में रहता है। सामान्य रूप से कमर, बस्ति, मेहन तथा ऊरूओं में पाया जाता है। यही शुक्र, आर्तव, मल, मुत्र, गर्भाशय से गर्भ को समय पर बाहर निकालना भी अपानवायु का कर्म है। अपान का स्थान पक्वाशय है यह वायु समय होने पर मल-मुत्र-शुक्र गर्भ और आत्तव को नीचे की और खींचती है। क्रुद्ध होने पर बस्ति आश्रित, गुदाश्रित भंयकर रोगो को उत्पन्न करती है।[12] दोनो अण्डकोष, बस्ति, मेढ[a], नाभि, ऊरू, वक्षण, गुद ये सब अपानवायु के स्थान है। इनसे देह का धारण होता है इन्ही के कारण शरीर निरोग रह सकता है।

3) **उदानः-**

उदान वायु का निवास स्थान कंठ है। उदान वायु का प्रमुख स्थान उरस है। यह वायु नासिका, नाभि, कण्ड प्रदेश में विचरण करता रहता है। वाक् प्रवृति, प्रयत्न, ऊर्जा, बल, वर्ग और स्मृति ये सब क्रियाएं इसी वायु के अधीन है।

जो श्रेष्ठ वायु ऊपर को जाती है उसका नाम 'उदान' है इसके स्थान नाभि, उर और कण्ठ है। इस वायु के द्वारा ही भाषण, गाना, उच्छवास आदि विशेष होते है। खासकर यह वायु जत्रु से ऊपर के (वक्ष एवं अंस सधि के उपर के) आंख, मुख, नासिका, कान एंव शिर के रोगों को तथा कामना आदि रोगों को उत्पन्न करती है। बोलने शब्द के उच्चारण करने की प्रवृति प्रत्येक कार्य को करने के लिए प्रयत्न करना, प्राणन या उत्साहशक्ति की वृद्धि, बल तथा वर्ण आदि को उचित रूप से रखना, ये सब उदानवायु के कर्म है।

4) **समानः-**

समानवायु नाभि में रहता है। समानवायु पाचक अग्नि के समीप रहता है। यह कोष्ठप्रदेशों से चारो और घुमता रहता है। यह आमाशय से अन्न को लेता है उसे पचाता है उसकी विवेचना करता है और उस पके हुए आहार में से रस, मल तथा मुत्र को अलग-अलग करके यथास्थान छोड़ देता है। समानवायु पच्यमान आहार के आशय स्थान अमाशय में, जठराग्नि से संगत रहती है यह अन्न से उत्पन्न होने वाले रस, दोष, मलों को पृथक करती है और विकृत होने पर गुल्म, अग्निसाद, अतिसार आदि रोगों को उत्पन्न करती है। स्वेद, वात आदि दोषों तथा जल का वहन करने वाले स्त्रोतो में आश्रित एंव जठराग्नि के समीप में रहने वाली समानवायु जठराग्नि के बल को बढ़ाने वाली होती है।

5) **व्यानः-**

व्यान संपूर्ण शरीर में फैला हुआ है। व्यान का प्रमुख स्थान हृदय है। यह वायु सम्पूर्ण शरीर में विचरण करता है क्योंकि यह अत्यंत वेगवान होता है गति, अपक्षेपण, उतक्षेपण, निमेष, उन्मेष आदि शब्द से जभाई आदि का ग्रहण ये सभी क्रियाएं व्यानवायु के अधीन है। व्यान वायु सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त है तथा रसादि को प्रेरित करती है स्वेद एंव रक्त का विस्त्रावण करते हुए प्रसारण आकुचन,

विन्नमन, तिर्यक गमन आदि पांच प्रकार की चेष्टा करती है। शीघ्र गतिशील व्यानवायु प्राणियों के सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त रहते हुए शरीर में गति उत्पन्न करना, अंगों को फैलाना, आक्षेप, निमेष क्रिया शब्द से उन्मेष क्रिया करती है। शरीर की समस्त क्रिया व्यानवायु के अधीन है।

उपप्राण एंवम् इनके कार्यः-

पांच मुख्य प्राणों के साथ पांच उप प्राण रहते है। वास्तव में उन्हे पंच वायु कहा जाता है। ये नाग, कूर्म, कृकंल, देवदत्त एंव धनजय है। पंच वायु अधिक स्थूल है पंच प्राणों की अपेक्षा इनकी ऊर्जा सीमित रूप में ही प्रकट होती है। घेरण्ड संहिता में इन दोनों को पृथक करने के लिए इनकी विशेषताओं के अनुसार इन्हे 'अंतर्वायु' और 'बहिर्वायु' कहा गया है।

1) **नाग-**

इसकी क्रिया से ही डकार और हिचकी आती है जब वायु तत्व उत्तेजित होता है तब नाग सक्रिय हो जाता है और यह उत्तेजित वायु को उदर से बाहर निकालने का प्रयास करता है जिससे उदान, प्राण और समान में कम्पन्न होता है जब तक भोजन स्वास्थ्यप्रद होता है और पाचन सही ढंग से होता रहता है तब तक नाग निष्क्रिय रहता है ध्यान की अवस्था में नाग क्रियाशील नहीं होता है।

2) **कूर्मः-**

यह आंखो को झपकता है और उन्हे स्वस्थ, नम एंव सुरक्षित रखता है यह व्यक्ति को सभी वस्तुओं को देखने योग्य बनाता है। कूर्म की ऊर्जा से ही आंखो में चमक होती है जो व्यक्ति को प्रभावशाली बनाती है जब कूर्म नियंत्रित रहता है तब योगी त्राटक करते हुए कई घंटो तक अपनी आंखे खुली रख सकते है यद्यपि कूर्म का कार्यक्षेत्र सीमित है, फिर भी इसमें बहुत शक्ति होती है जिसके कारण यह ध्यान के समय एकाग्रता को स्थिर तथा तीव्र बनाता है।

3) **कृकंल-**

जंभाई, भुख और प्यास इसके कार्यक्षेत्र में आते है और यह श्वसन में सहायक होता है चुंकि इसका सम्बध जंभाई से है, इसलिए इसके मूल में आलस्य और अकर्मण्यता है जब अभ्यास के द्वारा कृकंल नियन्त्रित हो जाता है तब आलस्य और नींद वश में हो जाते है, भूख और प्यास नियन्त्रित हो जाती है और मुंह में मीठा स्त्राव होने लगता है। कृकल पर नियंत्रण विशेष रूप से उपवास एंव समाधि के लिए उपयोगी होता है।

4) **देवदत्तः-**

इसके कारण छींक आती है और यह श्वसन में सहायता करता है यह तीखी या जलन उत्पन्न करने वाली गंध से सक्रिय हो जाता है और तीव्रतर स्थितियों में नासिकाओं में पीड़ा भी उत्पन्न कर देता है। अपनी सूक्ष्म अवस्था में देवदत्त साधक को दिव्य सुंगध प्राप्त करने योग्य भी बना देता है।

5) **धनंजयः-**

यह सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त है और इसका सम्बंध स्पर्शेन्द्रिय से होता है। यह पेशियों, धमनियों, शिराओं और चर्म के कार्यो को प्रभावित करता है। किसी अघात के कारण जो सूजन होती है, वह इसी के कारण होती है। तामसिक अवस्था में यह शरीर में आलस्य उत्पन्न कर देता हैं। धनंजय मृत्यु के बाद शरीर को छोड़कर जाने वाला अंतिम प्राण है और यही शरीर को अपघटित करता है।

हठप्रदीपिका में प्राणतत्वः-

प्राण के चलायान होने पर चित्त भी चंचल होता है प्राण के निश्चल हो जाने पर चित्त भी स्थिर हो जाता है प्राणो की स्थिरता से योगी स्थिरता को प्राप्त करता है, अतः उसे वायु पर नियत्रंण रखना चाहिए।[32] जब तक शरीर में वायु(प्राण) है तब तक जीवन है शरीर से वायु के निकल जाने पर मृत्यु हो जाती है, अतः वायु को रोक कर रखो। प्राण की मध्यवर्ती गति मन को स्थिर करती है। मन की स्थिरता मनोन्मनी (विचारशून्यता) की स्थिति है।

श्रीमद्भगवत्गीता में प्राणतत्वः-

प्राण और इन्द्रियाः- गीता में प्राण के विषय मे कहा गया है कि जो लोग मन तथा इन्द्रियों को वश में करके आत्म साक्षात्कार करना चाहते है वे अपनी सम्पूर्ण इन्द्रियों तथा प्राणवायु के कार्यो को संयमित करके मन रूपी अग्नि में आहुति कर देते है। दूसरे कितने ही योगीजन अपान वायु में प्राणवायु को हवन करते है वैसे ही अन्य योगीजन प्राणवायु में अपान को हवन करते है तथा अन्य कितने ही नियमित आहार करने वाले प्राणायाम परायण पुरूष प्राण और अपान की गति को रोककर प्राणो को प्राणो में ही हवन किया करते है।

प्राण, अपान वायु द्वारा मोक्ष प्राप्ति के संदर्भ में गीता में कहा गया है कि बाहर के विषय-भोगों को न चिंतन करता हुआ बाहर ही निकालकर और नेत्रों की दृष्टि को भृकुटी के बीच में स्थित करके तथा नासिका में विचरने वाले प्राण और अपानवायु को सम करके, जिसकी इन्द्रियां, मन और बुद्धि जीती हुई है। ऐसा जो मोक्षपरायण मुनि इच्छा, भय और क्रोध से रहित हो गया है वह सदा मुक्त है।

प्राण और योग का यह संबध है कि समस्त इन्द्रियों के द्वारों को रोककर तथा मन को हृदय प्रदेश में स्थिर करके फिर उस जीते हुए मन द्वारा प्राण को मस्तिक में स्थापित करके मनुष्य अपने को योग में स्थापित करता है।[38] मै ही सब प्राणियों के शरीर में स्थित रहने वाला प्राण और अपान से सयुंक्त वैश्वनर अग्नि रूप होकर चार प्रकार के अन्य को पचाता हूं।

उपनिषदो में प्राणतत्वः-

प्राण की महत्ता का वर्णन करते हुए उपनिषदो में प्राण का विस्तार से वर्णन मिलता है सृष्टि उत्पति के संबध में प्रश्नोपनिषद् में बड़े सौन्दर्य के साथ प्राण का वर्णन मिलता है भौतिक पदार्थो में सबसे अधिक व्यापकता सूचक आकाश और सबसे अधिक शक्ति का प्रकाशक प्राण को माना गया है इसलिए परमात्मा की व्यापकता को आकाश से और ज्ञानमय सर्वशक्तिमता को प्राण से निर्दिष्ट किया गया है। सब इन्द्रियों का कार्य प्राण शक्ति से ही चल रहा है, इसलिए उपनिषदों में कहीं-कहीं प्राण शब्द इन्द्रियों के लिए भी प्रयुक्त हुआ है।

ये बस भूत प्राण में लीन होते है और प्राण से प्रादुर्भूत होते है। देवता प्राण के सहारे सांस लेते है और जो मनुष्य तथा पशु है वे भी प्राण के सहारे सांस लेते है। प्राण सब जन्तुओं का आयु है इसलिये सर्वायुष कहलाता है।

उसने प्राण को ब्रह्मा जाना। प्राण से ही सब भूत उत्पन्न होकर प्राण से ही जीते है और मरते हुए प्राण में प्रवेश करते है। सम्पूर्ण जगत् में जो कुछ भी है वह प्राण से उत्पन्न होकर स्ंपदित होता है। जैसे रथ की नाभि में अरे लगे रहते है उसी तरह ऋक, यजुः, साम, यज्ञ तथा क्षत्रिय और ब्राहमण ये सब प्राण में ही स्थित है। प्राण की स्तुति करते हुए प्राण को प्रजापति, गर्भ में संचार करने वाला, माता-पिता के समान आकृति वाला होकर जन्म ग्रहण करवाने वाला बताया है सम्पूर्ण प्रजा प्राण को ही बलि समर्पण करती है क्योंकि प्राण समस्त इन्द्रियों के साथ स्थित रहता है। प्राण ही इन्द्र है अपने तेज के कारण रूद्र है प्राण ही सौम्यरूप से सब और से रक्षा करने वाला, ज्योतिर्गणका अधिपति सूर्य, अन्तरिक्ष में संचार करने वाला है। यह सब तथा स्वर्गलोक में जो कुछ स्थित है वह सब प्राण के अधीन है जिस प्रकार माता पुत्र की रक्षा करती है उसी प्रकार तू रक्षा कर तथा हमें श्री और बुद्धि प्रदान कर यह कामना प्राण से की गई है। पिप्पलाद आचार्य ने कौशल्य को प्राण की उत्पति के बारे में बताते हुए प्राण को आत्मा से उत्पन्न होने वाला बताया है जिस प्रकार मनुष्य शरीर से यह छाया उत्पन्न होती है उसी प्रकार इस आत्मा में प्राण व्याप्त है यह मनोकृत संकल्प आदि से इस शरीर में आ जाता है। वह वायु और उपस्थ में अपान को और मुख तथा नासिका से निकलता हुआ नेत्र एंव श्रोत्र में स्वयं होता है तथा मध्य में समान रहता है समानवायु ही खाये हुए अन्न को समभाव से ले जाता है प्राण अग्नि से ही सात ज्वालाएं उत्पन्न होती है। आदित्य ही बाह्य प्राण है इस चाक्षुष प्राण पर अनुग्रह

करता हुआ उदित होता है पृथ्वी में जो देवता है वह पुरूष के अपानवायु को आकर्षण किए हुए है इन दोनों के मध्य में जो आकाश है वह समान है और वायु ही व्यान है। लोकप्रसिद्ध तेज ही उदान है जिसका तेज शान्त हो जाता है वह मन में लीन हुई इन्द्रियों के सहित पुनर्जन्म को प्राप्त हो जाता है। पुरूष जो प्राणन करता है वह प्राण है और जो अपश्वास लेता है वह अपान है प्राण और अपान जो सन्धि है वही व्यान है जो व्यान है वही वाक् है इसी से पुरूष प्राण और अपान क्रिया न करते हुए ही वाणी बोलता है। जो ज्येष्ठ और श्रेष्ठ को जानता है वह ज्येष्ठ और श्रेष्ठ हो जाता है निश्चय ही प्राण ज्येष्ठ और श्रेष्ठ है।[53] प्राण ही उत् है प्राण के द्वारा ही यह सब उतब्ध धारण किया हुआ है वाक् ही गीथा है। वह उत् है और गीथा भी है इसलिए उद्गीथ है। जो उसे प्राण का प्राण, चक्षु का चक्ष, श्रोत्र का श्रोत्र तथा मन का मन जानते है वे उस पुरातन और अग्रच ब्रहमा को जानते है।

ब्राहमण ग्रंथो और आरण्यकों में प्राणतत्वः-

ब्राहमण ग्रंथो और आरण्यको में भी प्राण की महत्ता का गान एक स्वर से किया गया है उसे ही विश्व का आदि निर्माण, सबसे व्यापक और पोषक माना है। जो कुछ भी हलचल इस जगत में दृष्टिगोचर होती है उसका मूल हेतु प्राण ही है। कौषितकी ऋषि ने एकदेव प्राण को ही बताया है। पैज्य ऋषि ने प्राण को ब्रहमा कहा है।

इस समस्त संसार में तथा इस शरीर में जो कुछ प्रज्ञा है, वह प्राण ही है। जो प्राण है, वही प्रज्ञा तथा जो प्रज्ञा है वही प्राण है। प्राण ही इस विश्व को धारण करने वाला है तथा प्राण की शक्ति से ही यह ब्रहमांड अपने स्थान पर टिका हुआ है। चींटी से लेकर हाथी तक सब प्राणी इस प्राण के ही आश्रित है। यदि प्राण न होता तो जो कुछ हम देखते है कुछ भी न दिखता। प्राण ही प्रजापति परमेश्वर है। यह सारा जगत प्राण से आदृत है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में प्राण की महिमा का वर्णन करते हुए प्राण को भौतिक संसार का आधार बताया है। प्राण प्रत्येक वस्तु के अन्दर का गतिशील तत्व है प्रत्येक प्राणी प्राण की एक निश्चित मात्रा के साथ उत्पन्न होता है लेकिन उसकी मात्रा और गुण में आजीवन निरंतर परिवर्तन आते रहते है सकारात्मक विचार, उच्चतर भावनाएं एंव यौगिक अभ्यास उच्चतर स्तर के प्राण उत्पन्न करते है। एक योगी अपने अन्दर प्रचुर मात्रा में प्राण को संचित रखता है। बिल्कुल वैसे ही जैसे बैटरी में विद्युत। उसके प्राण ऊर्जा सामथ्र्य, स्वास्थ्य एंव ओज के रूप में उसके चारों ओर विकीर्ण होती रहती है। स्वामी शिवानंद कहते है जिस प्रकार जल एक पात्र से दूसरे पात्र की और प्रवाहित होता रहता है। उसी प्रकार एक सिद्ध योगी का प्राण निरंतर दुर्बल व्यक्तियों की और प्रवाहित होता रहता है। सभी तत्व प्राण से निर्मित है प्रत्येक प्राणी में प्राण की मात्रा उन तत्वों के गुणों पर निर्भर रहती है जिनके सम्पर्क में आता है अर्थात उनको ग्रहण करता है। सृष्टि की समस्त प्रक्रिया का आधार प्राण को ही बताया गया है सभी प्राणी प्राण से ही तो जीवन पाते है प्राण शक्ति ही हमें शतवर्षपर्यन्त शक्तिशाली बनाता है और दीर्घायु प्राप्त कराता है प्राण साधना एंव इससे अपना और सन्तानों के दीर्घ जीवन और स्वास्थ्य के विषय में ज्ञान प्राप्त होता है। वर्तमान समय में ज्यादातर अभ्यासियों की असफलता का कारण प्राण तत्व की शुद्धता को महत्व न देना है जिसने प्राण तत्व की महत्ता को न समझकर सयम करने का प्रयास नहीं किया वह इसी भ्रम से युक्त संसार में अज्ञानता के कारण तृष्णा से युक्त, जन्म-मृत्यु को प्राप्त होता हुआ, कष्टों का भोगता रहता है।

References

तँ हाड्गरा उदीथमुपासाचक्र एतमु एवाडिगरस मन्यन्तेऽड्गानां यद्रसः।। (**छान्दोग्योपनिषद**, **गीताप्रेस गोरखपूर**, 2/2/10)

तेन तँह बृहस्पतिरूदगीथमुपासाचक एतमु एंव बृहस्पति मन्यन्ते वाग्धि बृहती तस्या एष पतिः।। (छान्दोग्यपनिषद, गीताप्रेस गोरखपुर, 2/2/11)

प्राणस्य सर्वमन्नं प्राणोऽत्त (छान्दोग्यपनिषद, गीताप्रेस गोरखपूर, 5/2/1)

प्राण एव परं मित्र प्राण एव परः सखा। प्राणतुल्यः परो बन्धुर्नास्ति नास्ति वरानने।। (शिव स्वरोदय, श्लोक संख्या 219)

यदिंद किं च जगत्सर्व प्राण एजति निःसृतम् (कठोपनिषद्, 2/3/2)

हिरदै में अस्थान है, प्रानवायु का जान।
वाके राके सबरूकै, वायुन में परधान।।
जैसे गंगा एकही, घाट घाट के नावै।
ऐसे प्राणहि वायुके, नावै कहे बहु ठावे।।
चैरासी अस्थान पर, चैरासीही वायु।।
(अष्टाग योग, ओमप्रकाश तिवारी पृष्ठ संख्या 23, 52)

प्राणोऽत्र मूर्धगः। उरः कण्ठचरो बुद्धिहृदयेन्द्रियचित्तधृक।।
ष्ठीवनक्षवयूदारनिः क्शसात्रप्रवेशकृत। (अष्टाग हृदयम्. डा0 **ब्रहमानन्दत्रिपाठी**, 12/14)

यो वायुवक्त्रसंचारी स प्राणो नाम देहधृक।
सोऽन्न प्रवेशयव्यन्तः प्राणाश्वाप्यवलम्बते।।
प्रायशः कुरूते दुष्टो हिक्काक्श्वासादिकान् गदान्। (सू0**स**0, **अत्रिदेव, निदानस्थानम्**, 1/13)

संस्थान प्राणस्य मूर्धोरःकण्ठजिह्वास्यनासिकाः।
ष्ठीवनक्षवथूद्गाश्वासाहाररादिकर्म च।। (चरक सहिता, डा0 **ब्रहमानंदत्रिपाठी, चिकित्सास्थानम्** 28/6)

बसै अपान गुदा के माही।। (अष्टांग योग, ओमप्रकाश तिवारी, पृष्ठ संख्या 23, **श्लोक संख्या** 54)

अपानोऽपानगःश्रोणिबस्तिमेढोरूगोचरः।
शुक्रार्तवशकृन्मूत्रगर्भनिष्क्रमणक्रियः।। (अष्टाग हृदयम्. डा0 **ब्रहमानंद त्रिपाठी**, 12/9)

पक्वाधानालयोऽपानः काले कर्षति चाप्यधः।
वात-मूत्र-पुरीषाणि शुक्रगर्भार्तवानि च।। क्रुद्धश्च कुरूते रोगान् घोरान् बस्तिगुदाश्रयान्।। (सु0**स**0, **अत्रिदेव, निदानस्थानम्** 1/19)

वृषणौ बस्ति मेढ्र च नाभ्यूरू वंक्षणौ गुदम्। स्वकर्म कुर्वते देहो धार्यते तैरनामयः।। (च0**स**0, **डा**0 **ब्रहमानंद त्रिपाठी, चिकित्सास्थानम्**, 28/10)

कंठ माहि बाई उद्याना।। (अष्टांग योग, ओमप्रकाश तिवारी, पृष्ठ संख्या 23, **श्लोक संख्या** 54)

उरःस्थानमुदानस्य नासानाभिगलां श्चरेत्। वात्प्रवृतिप्रयत्नोर्जाबलवर्णस्मृतिक्रियः।। (अष्टाग हृदयम, डा0 **बृहमानन्द त्रिपाठी**, 12/5)

उदानो नाम यस्तूध्ववर्वमुपौति मुपैति पवनोत्तमः।। तेन भाषितगीताविशेषोऽमिप्रवर्तते। ऊधर्वजत्रुगतान् रोगान् करोति च विशेषतः।। (सु0**स**0, **अत्रिदेव, निदानस्थानम्**, 1/14,15)

उदानस्य पुनः स्थान नाभ्युरः कण्ठ एंव च। वाक्प्रवृतिः प्रयत्नोर्जो बलवर्णादि कर्म च।। (च0**स**0, **डा**0 **ब्रहमानंद त्रिपाठी, चिकित्सास्थानम्**, 28/7)

वायु समान नाभि अस्थाना। (अष्टाग योग, ओमप्रकाश तिवारी, पृष्ठ संख्या 23, **श्लोक संख्या** 54)

समानोऽग्निसमीपस्थः कोष्ठे चरति सर्वत। अत्रं गृहणति पचाति विवेचयति मुञ्चति। (अष्टांग हृदयम, डा0 **बृहमानन्द त्रिपाठी**, 12/8)

आमपक्वाशयचरः समानो वह्निसङ्गत सोऽन्न पचति तज्जांशय विशेषान्विविनक्ति हि।। गुल्माग्निसादातीसारप्रमृतीन् कुरूते गदान्। (सु0**स**0, **अत्रिदेव, निदानस्थानम्**, 1/16)

स्वेददोषाम्बुवाहीनि स्त्रोतासिं समधिष्ठितः। अन्तरग्नेश्व पाश्वस्थः समानोऽग्निबलप्रदः (च0**स**0, **डा**0 **ब्रहमानंद त्रिपाठी, चिकित्सास्थानम्**, 28/8)

व्यान जु व्यापक है तन सारै।। (अष्टाग योग, ओमप्रकाश तिवारी, पृष्ठ संख्या 23, **श्लोक संख्या** 54)

व्यानो हृदि स्थितः कृत्स्नदेहचारी महाजवः गत्यपक्षेणोत्क्षेपनिमेषोन्मेषणः प्रायः सर्वाः क्रियास्तस्मिन् प्रतिबद्धाः शरीरिणाम्।। (अष्टाग हृदयम, डा0 **बृहमानन्द त्रिपाठी**, 12/**6-7**)

कृत्स्नदेहचरो व्यानो रससवहनोद्यतः स्वेदासृकस्त्रावण्श्चापि पचधां चेष्टयत्यपि। क्रुद्धश्च कुरूते रोगान् प्रायशः सर्वदेहगान्। (सु0**स**0, **अत्रिदेव, निदानस्थानम्**, 1/17,18)

देह व्याप्नोति सर्व तु व्यानः शीघ्रगतिर्नृणाम्। गतिप्रसारणाक्षेपनिमेषादिक्रियः सदा।। (च0स0, डा0 ब्रहमानंद त्रिपाठी, चिकित्सास्थानम्, 28/6)

प्राण एवं प्राणायाम, स्वामी निरंजमानन्द सरस्वती, पृष्ठ संख्या 56

प्राण एवं प्राणायाम, स्वामी निरंजमानन्द सरस्वती, पृष्ठ संख्या 56

प्राण एवं प्राणायाम, स्वामी निरंजमानन्द सरस्वती, पृष्ठ संख्या 56

प्राण एवं प्राणायाम, स्वामी निरंजमानन्द सरस्वती, पृष्ठ संख्या 57

प्राण एवं प्राणायाम, स्वामी निरंजमानन्द सरस्वती, पृष्ठ संख्या 57

प्राण एवं प्राणायाम, स्वामी निरंजमानन्द सरस्वती, पृष्ठ संख्या 57

चले वाते चलं चितं निश्चले निश्चलं भवेत्। योगी स्थाणुत्वमाप्नोति ततो वायुं निरोधयेत्।। हठयोग प्रदीपिका (2/2)

यावद्वायुः स्थितो देहे तावज्जीवनमुच्यते। मरण तस्य निष्क्रातिस्ततो वायु निरोधयेत्।। हठयोग प्रदीपिका (2/3)

मारूते मध्यसंचारे मनः स्थैर्य प्रजायते। यो मनः सुस्थिरीभावः सैवावस्था मनोन्मनी।। हठयोग प्रदीपिका (2/42)

सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे। आत्मसयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते।। (श्रीमद्भगवद्गीता, 4/27)

अपाने जूह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे प्राणापानगती रूद्ध्वा प्राणायामपरायणाः अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जूह्वति । (श्रीमद्भगवद्गीता, 4/29,30)

स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाहाश्चक्षु श्रचैवान्तरे भ्रवो।
प्राणपानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तर चारिणौ।।
यतोद्रियमनो बुद्विर्मुनिर्मोक्षिपरायणः।
विगतेच्छोभय क्रोधो यः सउा मुक्त एव स।। (श्रीमदभगवद्गीता, 5/27,28)

सर्वद्वाराणि सयम्य मनो हदि निरूध्य च।
मूध्न्यधियात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम्।। (श्रीमदभगवद्गीता, 8/12)

अहं वैश्वानरो भुत्वां प्राणिनां देहमाश्रितः।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्न चतुर्विधम्।। (श्रीमदभगवद्गीता, 15/14)

सर्वाणि ह वा इमानि भूतानि प्राणमेवाभिंसविशन्ति, प्राणमभ्युज्जिहते (छान्दोग्यपनिषद 1/11/5)

प्राणं देवा अनुप्राणन्ति। मनुष्याः पशवच्श्र ये। प्राणी हि भूतानामायुः। तस्मात्सर्वायुषमुच्यते। (तै0 उ0 ब्रहावल्ली अनु03)

प्राणो ब्रहमोति व्यजानत्। प्राणाद्धयेव खल्विमानि।
भुतानि जायन्ते। प्राणेन जातानि जीवान्ति। प्राणं प्रयन्तभिसंविशन्तीति। (तै0 उ0 भृगुवल्ली अनु03)

यदिदं कि च जगत्सर्व प्राण एजति निःसृतम्।। (कठोपनिषद्, 2/3/2)

अरा इव रथनाभौ प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम्।
ऋचो यजूऋषि सामानि यज्ञः क्षत्रं ब्रहमा च।। (प्रश्नोपनिषद् 2/6)

प्रजापतिश्वसि गर्भे त्वमेव प्रतिजायसे।
तुभ्यं प्राण प्रजास्त्विमा बलिं हरन्ति यः प्राणै प्रतितिष्ठसि।। (प्रश्नोपनिषद 2/7)

इन्द्रस्त्व प्राण तेजसा रूद्रोऽसि परिरक्षिता।
त्वमन्तरिक्षे चरसि सूर्यस्त्वं ज्योतिषां पतिः।। (प्रश्नोपनिषद 2/9)

प्राणस्येदं वशे सर्वत्रिदिवे यत्प्रतिष्ठितम्।
मातेव पुत्रान् रक्षस्व श्रीश्व प्रज्ञां च विधेहि न इति।। (प्रश्नोपनिषद् 2/13)

आत्मन एष प्राणो जायते।
यथैषा पुरूषे छायैतस्मिन्नेतदातंत मनोकृतेनायात्यास्मिञ्शरीरे।। (प्रश्नोपनिषद, 3/3)

पायूपस्थेऽपानं चक्षुः श्रोत्रे मुखनासिकाभ्यां प्राणः स्वयं प्रातिष्ठतेमध्ये तु समानः।
एष ह्येतद्धुतमन्नं समं नयति तस्मादेताः सप्तार्चिषो भवन्ति।। (प्रश्नोषनिषद 3/5)

आदित्यों ह वै बाहयः प्राण उदयत्येष होयनं चाक्षुषं प्राणमनुगहन ।
पृथिव्यां या देवता सैषा पुरूषस्यापानमवष्टभ्यान्तरा यदाकाशः स समानो वायुर्व्यान । (प्रश्नोपनिषद, 3/8)

तेजो ह वा उदानस्तस्मादुपशान्ततेजाः पुनर्भवामिन्द्रियैर्मनसि सम्पद्यमानैः।। (प्रश्नो 03/9)

प्राणिति स प्राणो यद्रपानिति सोऽपानः।
अथ यः प्राणापानयोः सन्धिः स व्यानोः स वाक्।